RESEARCH FRONT

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

पृथक राज्यत्व के लिये संघर्षरत आन्दोलन : गोरखालैण्ड के विशेष सन्दर्भ में

रीना देवी
राजनीति विज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत एक विशाल क्षेत्रफल और विशालकाय जनसंख्या वाला एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है। इसके सभी क्षेत्र भौगोलिक भिन्नताओं के साथ–साथ इसके विभिन्न क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से समान रुप से विकसित नहीं हो पाये हैं। और इसलिये इनमें गहरा क्षेत्रीय असंतुलन बना हुआ है।[1]

जन्म भूमि से प्रेम अथवा किसी जगह या क्षेत्र या राज्य, उसकी भाषा और संस्कृति के प्रति प्रेम या लगाव सम्बंधी क्षेत्रवाद राष्ट्र के लिए घातक नहीं है। ''1909 में गॉधी जी द्वारा स्पष्ट तौर पर कहा गया था, भारतीय के रुप में मेरे गौरव के आधार स्वरुप मुझे अपने गुजराती होने पर भी उतना ही गर्व होना चाहिये। नही तो हम लोग बिना किसी जड़ के रह जायेंगे।''[2]. किसी भी राष्ट्र में क्षेत्रवादी प्रवृत्तियां अपनी जड़ें और गहरी तब करती हें जब क्षेत्र के लोग यह महसूस करने लगें कि उनके साथ भेद भाव पूर्ण नीतियों का प्रयोग हो रहा है उनकी सांस्कृतिक पहचान पर खतरा है।

भारत जैसे विभिन्नता वाले देश में जहॉ कदम–कदम पर भाषा, संस्कृति, जाति, धर्म, अर्थिक, सामाजिक, अन्तर है वहॉ प्रादेशिकता या क्षेत्रवाद की भावना का मिलना स्वाभाविक ही है। भारतीय राजनीति के बदलते परिवेश में क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग की चुनौती बन गई है। यद्यपि भारत में प्राचीन काल से ही क्षेत्रवाद का रुप विद्यमान रहा है किन्तु राष्ट्रीय हित के लिए उतना घातक पहले कभी नहीं रहा जितना स्वतंत्रता पश्चात् से दिखाई दे रहा है।[3]. भारतीय संविधान निर्माण भी इन क्षेत्रवादी शाक्तियों के संदर्भ में काफी सजग थे इसलिये इन्हें नियंत्रित करने के लिये उन्होंने भारतीय संघीय व्यवस्था में एकात्मकता के तत्वों का समावेश किया एकहरी नागरिकता का प्रावधान भी रखा और क्षेत्रीय शक्तियों को राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से जोड़े रखने की कोशिश भी की, किन्तु इससे भी वांछित परिणाम भी न मिल सके। राज्य के क्षेत्र विशेष के लोग आज भी अपनी पहचान अपने क्षेत्र के संदर्भ में ही देखते हैं भारतीय नागरिक होने के संदर्भ में नहीं। कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने राजनीतिक पक्ष को मजबूत करने के लिए क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काना शुरु कर दिया जिसके परिणाम स्वरुप स्वतंत्रता के बाद से ही क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति का अटूट हिस्सा बन गयी।

भारतीय राजनीति के परिपेक्ष्य में क्षेत्रवाद राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव उसके प्रति भक्ति या विशेष आकर्षण दिखाना। इस दृष्टि से क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की वृहद भावना का विलोम है और इसका उद्देश्य संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति होना है। भारतीय राजनीति के संदर्भ में यह ऐसी धारणा है जो भाषा धर्म क्षेत्र आदि पर आधारित है जो विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। क्षेत्रवाद की भावना सारे देश में व्याप्त है जो कि प्रायः सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित आन्दोलनों तथा अभियानों के रुप में प्रकट होती है।[4]

यद्यपि क्षेत्रवाद की वास्तविक जड़ें ब्रिटिश काल में ही भारत में जम गई थी । 1947 में मिली स्वतंत्रता वास्तव में खण्डित स्वतंत्रता थी जिसनें उस समय दो राष्ट्रों को जन्म दिया भारत और पाकिस्तान साथ ही 562 देशी रियासतों का भारत में विलय ने भारतीय एकता को एक सूत्र में तो बॉधा किन्तु राज्यों के गठन के संदर्भ में संदेह भी डाल दिया। क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता के समय जो सीमायें निर्धारित की गयी थी वास्तव में वह भारतवासियों के लिये आतार्किक एवं अस्वभाविक थी। साथ प्रदेशों की सीमाओं के निर्धारण में भाषा एवं संस्कृति की समरुपता का भी ध्यान नहीं रखा गया।[5]

परिणामस्वरुप स्वतंत्रता के तुरंत बाद भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की मांगे उठने लगी। आन्दोलन, हड़तालें, बंद हिंसक गतिविधियां होती रहीं, नित नई मांगे नित नये राज्यों का गठन होता रहा, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र पंजाब, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, त्रिपुरा, मेघालय, उत्तराखण्ड, झारखण्ड तेलंगाना इत्यादि अनेक राज्यों एवं पूर्ण स्वायत्तशासी राज्यों का गठन होता रहा। स्वतंत्रता काल में जो राज्यों की संख्या 14 थी आज वो 29 पर पहुँच गयी है। किन्तु क्षेत्रवादी मांगे आज भी सर उठाये हुये है। संविधान के प्रवर्तन के इतने समय पश्चात् भी यह प्रश्न हमें उद्वेलित करता है कि समता पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के बावजूद भारत के राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक जीवन में भी क्षेत्रीय भेदभाव उसी तरह विद्यमान है। जिस तरह वह स्वतंत्रता पूर्व था।

क्षेत्रवाद के स्वरुपः– भारतीय राजनीति में ये क्षेत्रवादी मांगे अपने विभिन्न मुद्दों के आधार पर विभिन्न स्वरुपों के रुप में प्रदर्शित होते हैं। मुद्दे चाहे भाषायी हों, आर्थिक असंतुलन, विकास या नृजातीयता या पहचान का संकट था। भौगोलिक आधार पर क्षेत्रवाद मुख्यतः तीन प्रकार से प्रकट होता है।

1. भारतीय संध से पृथक होने की मांग।
2. पृथक राज्य के गठन की मांग।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

3. पूर्ण राज्यत्व का दर्जा ।
4. अन्तर्राज्यायी विवाद।

इन चारों स्वरुपों में से मुख्यतः क्षेत्र विशेष भारतीय संघ के अन्तर्गत ही पृथक राज्यों के गठन के लिये ही अधिकांशतः आन्दोलित रहते है। पृथक राज्य के गठन को संदर्भ क्षेत्रवाद की महत्वपूर्ण मांग है। आर्थिक पिछड़ेपन, धर्म, जाति, भाषा को लेकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा समय–समय पर उठायी गयी, स्वतंत्रता पश्चात् सर्वप्रथम आन्ध्र प्रदेश द्वारा पृथक राज्य की मांग उठाई और तब से यह सिलसिला आज तक चलता आ रहा है हॉ मुद्दे अवश्य बदले परंतु परिणीत स्वरुप सब आन्दोलित क्षेत्र पृथक राज्य के गठन में लगे हुये है।

भारत में पृथक राज्यों के गठन की मांग का इतिहास काफी लम्बा है। क्षेत्रीय पहचान, स्वायत्ता एवं पृथक राज्यों की मांग सम्बंधी अनेक आन्दोलन आज भी सक्रिय हैं जो राज्य विशेष की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विकास की असंगत एवं असंतुलित प्रक्रिया पर आधारित होते है। पृथक राज्यत्व की मांग के संदर्भ में पश्चिम बंगाल का एक क्षेत्र विशेष लगभग एक शताब्दी से संघर्ष रहा है। वह है– गेरखालैण्ड

प्रस्तावित पृथक गोरखालैण्ड– ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिदृश्यः–

यद्यपि स्वतंत्र भारत में पृथक गोरखालैण्ड की मांग कुछ दशकों से मानी जाती है परंतु वास्तव में पृथक गोरखालैण्ड की मांग एक शताब्दी पुरानी है। प्रस्तावित पृथक गोरखालैण्ड के पश्चिम बंगाल में उत्तर बंगाल के पहाड़ी इलाकों कके सबडिवीजन कलिंपोंग, कुर्सियांग, दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, तराई और डुआर्स के इलाकों को मिलाकर प्रस्तावित की गई।[6] चार दिशाओं में लगभग चार अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से घिरा प्रस्तावित गोरखालैण्ड का इलाका कई दृष्टियों से आकर्षण का केन्द्र होने के कारण और इसके भौगोलिक सांस्कृतिक भाषिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों को विचार कर समस्या को जटिल और विकराल होने की स्थिति में पहुॅचाना राष्ट्रीय भूल ही माना जायेगा लेकिन जाति विशेष और राजनीतिक आकड़ों के आधार पर चलने वाली देश की राजनीति सत्ता रुढ दल के हित और जाति के आधार पर बने राज्य के प्रभुत्व और वर्चस्व को स्वीकार करती है। जिसके कारण गोरखालैण्ड आन्दोलन हर आधे दशक की अवधि में उग्र होता और समझौतों की मार से शांत हो जाता।[7]

बीसवीं सदी के पहले दशक में 1907 में सर्वप्रथम नेपाली, भूटिया, और लेप्चाओ ने मिलकर ब्रिटिश सरकार (मिन्टो मार्ली रिफार्मस) के समक्ष दार्जिलिंग में पृथक प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए मांग उठायी।[8] (ऐतिहासिक रुप से दार्जलिंग सिक्किम की राजशाही से सम्बद्ध रहा)। यह मांग स्थानीय निवेशकों की प्रतिक्रिया के रुप में उभर कर सामने आयी जिसका मूल कारण चाय उत्पादक क्षेत्रों को असम और बंगाल के मध्य विभाजित किया जाना था।[9]

भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान नेपालियों के अप्रवास में वृद्धि हुई तथा दार्जिलिंग जिले में नेपाली लोगों का प्रतिशत् काफी बढ़ गया था। ब्रिटिश सेना में नेपालियों को गोरखा के नाम से जाना जाता था। 1917 में गठित हिलमैन्स ऐसोशिएसन में नेपाली अभिजन समूह की प्रमुखता थी कहा जाता है कि इसी वर्ष सर्वप्रथम पृथक राज्य की मांग उठायी गई।[10] तत्कालीन सचिव एडविन मांटेग्यू को हिलमैन्स ऐसोसिएशन ने एक मांग पत्र द्वारा दार्जिलिंग और बंगाल के मध्य उस समय की भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक, तथा धार्मिक विभिन्नताओं से अवगत कराया। मांग पत्र में उल्लेख करते हुये कहा गया था, ''दार्जिलिंग का बंगाल में मिलाया जाना तुलनात्मक रुप से दीर्घकालिक नहीं है। यद्यपि दोनों की जगह शासक ब्रिटिश के ही है किन्तु ऐतिहासिक सांस्कृतिक जातिय सामाजिक धार्मिक भाषाई किसी भी रुप में बंगाल और दार्जिलिंग में कोई समान्ता नहीं है।'' इसी में आगे उल्लेख किया गया है कि भविष्य की योजना बनाते हुए शासन को एक अलग इकाई बनाने का लक्ष्य रखना चाहिये जिसमें दार्जिलिंग जिले के साथ जलपाईगुड़ी जिले का वह हिस्सा भी शामिल रहे जिसे भूटान से 1865 में लिया गया था।[11] वास्तव में, प्रस्तावित गोरखालैण्ड के भू भाग का अधिकांश भाग 1835 से पूर्व सिक्किम का हिस्सा रहा। 1817 से पूर्व यह भू भाग नेपाल के राजा का था। 1789 में सिक्किम के राजा को परास्त करके ले ली गई थी। 1813 ई0 से 1816 ई0 के औपनिवेशिक भारत–नेपाल के युद्ध के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने नेपाल के राजा से दार्जिलिंग एवं अन्य क्षेत्रो में कब्जा कर लिया। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि 1815 में युद्ध के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी और नेपाल के महाराजा विक्रमशाह के मध्य हुई सुगौली संधि के तहत काली और राप्ति नदी के बीच की भूमि, राप्ति और गंडक नदी के बीच की भूमि, मेची के पूर्व के नागरीफोर्ट, नगरकोट पास, जहां गोरखा रहते थे। ईस्ट इण्डिया को उपहार स्वरुप दे दी गई थी। चूॅकि युद्ध के दौरान सिक्किम के राजा ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशंसनीय सहायकता की थी इसी कारणवश नेपाल द्वारा अधिकृत भाग बाद में कम्पनी ने सिक्किम को दे दिया। अंग्रेजों सरकार को जब दार्जिलिंग एवं उसके परिक्षेत्र में चाय उत्पादन की योजना के लिये इसकी आवश्यकता थी। 1865 में भूटान से कलिम्योंग क्षेत्र को अधिगृहित कर सम्मिलित कर लिया।[12]

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

1929 में एक बार पुनः हिलमेंस ऐसोशिएशन ने साइमन कमीशन के समक्ष पृथक राज्य की मांग की । इसके उपरांत 1935 में हिलमैन्स ऐसोसिऐशन की ओर रुपनारायण सिन्हा ने 1915 एक्ट का विरोध कर अपने इस क्षेत्र सम्बंधी आन्दोलन को होमलैण्ड की मांग का नाम दिया, धीरे–धीरे इन दबाव पूर्ण स्थितियों ने वहां के गोरखा लोगों के प्रति किये गये व्यवहार को और अधिक उद्वेलित कर दिया अपने आर्थिक और सांस्कृतिक हितों पर दूसरी संस्कृति (बांग्ला) से प्रत्यक्ष प्रभाव एवं तकराव ने पृथक गोरखा राज्य के लिये वहां के लोगों की मानसिकता को और अधिक स्पष्ट कर दिया परिणाम स्वरुप 1943 ई0 में आल इण्डिया गोरखा लीग की स्थापना हुई।[13]

1945 में कम्यूनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया (सी0पी0आई0) ने गोरखा लीग से सम्बंध विच्छेद कर एक अलग राज्य 'गोरखा लीग' की स्थापना के लिये आन्दोलन छेड दिया। 1947 को सी0पी0आई0 की दार्जिलिंग जिला इकाई ने भारत की अन्तरिम सरकार के उपराष्ट्रपति जवाहर लाल नेहरु और वित्त मंत्री लियाकत अली खान के समक्ष गोरखास्थान बनाने की मांग रखी। जिसमें दार्जिलिंग जिला सिक्किम का दक्षिण भाग और नेपाल के कुछ भाग शामिल करने का सुझाव दिया। 1980 में गोरखा लीग के पश्चात् प्रान्त मोर्चा ने गोरखालैण्ड के लिये आन्दोलन को गति प्रदान की। इन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को पत्र द्वारा अलग राज्य गठित करने की मांग की साथ ही उन्हें आश्वासन दिया कि पृथक राज्य बनने के बाद भी गोरखालैण्ड भारतीय संघ का ही हिस्सा रहेगा।

80 के दशक में गोरखालैण्ड आन्दोलन के संदर्भ में क्रान्तिकारी मोड़ आया। 30 जुलाई 1980 को गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट (जी0एन0एल0एफ0) का गठन किया और संवैधानिक एवं गैर संवैधानिक सभी प्रकार के माध्यमों से पृथक गोरखालैण्ड गठल की मांग को गति प्रदान की। वहीं दूसरी ओर जी0एन0एल0एफ0 की सफलता को देखते हुये प्रान्त परिषद के अध्यक्ष इन्द्र बहादुर राई ने 1982 को गृहमंत्री ज्ञानीजैन सिंह को पत्र लिखकर दार्जिलिंग और जलपाई गुडी को संयुक्त करके गोरखालैण्ड गठन करने की मांग की। गोरखालैण्ड आन्दोलन का अभी तक का संघर्ष काफी रक्त रंजित रहा। 1200 लोगों को शहीद होना पड़ा जी0एन0एल0एफ0 के धरना प्रदर्शन बंद, हड़ताल एवं हिसक साधनों का प्रयोग कर इस आन्दोलन को काफी रक्तरंजित बना दिया साथ इसका सहयोग कई हिसात्मक प्रतिबंधित सगठन भी कर रहे थे। जो वास्तव में राष्ट्रीय एकता के लिये घातक साबित हो रहे थे। पूर्व मुख्यमंत्री ज्योति बसु के नेतृत्व में इस आन्दोलन को पुलिस बल द्वारा दबाने की कोशिश भी गई। वो एक सर्वदलीय बैठक आयोजित कर गोरखा नेशनल लिबरल फ्रंट को अलग–थलग कर राजनीतिक रुप से शिकस्त देना चाहते थे किन्तु वैसा हो न सका। पश्चिम बंगाल की वाम पंथी सरकार ने गोरखा आन्दोलन को राष्ट्र द्रोही भी घोषित कर दिया। वहीं 1986 में जब प्रधानमंत्री राजीव गांधी पश्चिम बंगाल के दौरे पर थे तब उन्होंने गोरखा आन्दोलन को राष्ट्रद्रोही घोषित करने से इन्कार कर दिया जिसके चलते प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष को पद से हटाना भी पड़ा।[14] क्योंकि उसने भी गोरखा आन्दोलन को राष्ट्रद्रोही घोषित किया था।

यद्यपि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता की जी0एन0एल0एफ0 की गति विधियां राष्ट्र के लिये अहितकारी है। गोरखा आन्दोलनकारियों को विदेशी समर्थन प्राप्त था जो मात्र नैतिक ही नहीं आर्थिक भी था जो वास्तव में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये घातक हो सकता था, किन्तु यदि राजीव गॉधी जी गोरखालैण्ड आन्दोलनकारियो को देशद्रोही घोषित कर देते तो स्वयं केन्द्र को इस आन्दोलन के दमन की जिम्मेदारी लेनी पड़ती और तब शायद ये आन्दोलन और उग्र हो जाता जिससे अन्तर्राष्ट्रीय दबाव बढ़ने की सम्भावना में प्रबल हो जाती।

1987 में राजीव गॉधी सरकार के समय गोरखालैण्ड आन्दोलन को एक त्रिपक्षीय समझौते के आधार पर शांत करने की कोशिश की गई। 1988 में भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के मध्य समझौता हुआ जिसके तहत (पृथक गोरखालैण्ड न सही) ''दर्जिलिंग गोरखा हिल्स काउंसिल का गठन किया गया जो कि एक क्षेत्रीय परिषद थी जिसे आर्थिक विकास कार्यक्रमों, शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में अधिकार दिये गये। 1988 में पारित होने के बाद चुनाव सम्पन्न हुआ और सुभाष घीसिंग ने मनमाने ढंग से शासन चलाना शुरु कर दिया चूँकि परिषद के अधिकार सीमित थे और दार्जिलिंग जिलों से सिलीगुडी को अलग करके सिलीगुड़ी महकमा परिषद को जिला परिषद की क्षमता दी गई। डुवर्स का वह भाग भी परिषद में नहीं मिलाया जहां गोरखा मूल के लोग ज्यादा संख्या में है। इसलिये पृथक गोरखालैण्ड के लिए पुनः आन्दोलन होने लगे तो सभी काउंसिलरों ने भी त्यागपत्र दे दिया।

2004 में (बसु 2001:282) में चौथे चुनाव होने थे मगर चुनाव न कराकर धीसिंग को ही परिषद की कमान दे दी गई इससे पहले भी लिबरेशन फ्रंट ने तीन बार चुनाव जीता था सब जानते थे सुभाष धीसिंग मनमाने तरीके से सत्ता सुख प्राप्त कर शासर कर रहे थे। स्थानीय लोगों के हितों के लिए भी कोई सार्थक कार्य नहीं किया, इस कारण स्थानीय स्तर पर असंतोष उभरा और विमल गुरुँग ने ''गोरखालैण्ड जनमुक्ति मोर्चा'' का गठन किया उन्हें जनसमर्थन भी हासिल हुआ।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

उत्तराखण्ड एवं झारखण्ड के गठन के उपरांत इस आन्दोलन ने और गति पकड़ी। 2005 में पृथक गोरखा पहाड़ी क्षेत्रों को छठवी अनुसूची में सम्मिलित करने का समझौता हुआ। यहां यह बताना आवश्यक है कि इस सूची के प्रावधानों को पूर्वोत्तर राज्यों को छोडकर तथा संघ के किसी भी अन्य राज्य के लिये मान्य नहीं है लेकिन दार्जिलिंग जिले के पहाड़ी लोगों भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आकांक्षा की पूर्ति ने के लिये विशेष प्रावधान किये गये है। इस सूची में असम मेघालय मिजोरम और त्रिपुरा के जन जातीय क्षेत्रों में स्वायत्त जिला परिषदों/क्षेत्रीय परिषदो के द्वारा प्रशासन के लिये उपबन्ध किये गये।

दिसम्बर 2005 में भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिलिंग के मध्य छठवीं अनुसूची के तहत जो नई परिषद बनाने का समझौता हुआ उस परिषद को ''दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद के नाम से ही जाना जायेगा। इसके पास पर्याप्त विधायी और कार्यपालिकीय अधिकार प्राप्त थे। किन्तु काउंसिल के प्रशासक के पद पर सुभाष धीसिंग का होना एवं छठवीं अनुसूची के विरोध में पहाड़ की जनता सड़कों पर उतर आई परिणाम स्वरुप गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष तथा काउंसिल के प्रशासक सुभाष धीसिंग को दार्जिलिंग छोड़कर भागना पड़ा।

2007 में विमल गुरुंग और रोशन गिरी के नेतृत्व में ''गोरखाालैण्ड जन मुक्ति मोर्चा'' (गो0ज0मु0मो0) का गठन हुआ। इस संगठन ने गोरखा लैण्ड आन्दोलन तीव्रता एवं नई दिशा प्रदान की। यह आन्दोलन तीन साल तक चला जिसके पश्चात् गो0 ज0 मु0 मो0 दार्जिलिंग पहाड़ी क्षेत्र पर अर्द्ध शासन के समझौते पर पहुॅची। इस समय तक पश्चिम बंगाल के राजनीतिक वातावरण में भी परिवर्तन आ चुके थे। अब वहॉ वाम मोर्चा की सरकार नहीं थी। तृणमूल कॉग्रेस और कांग्रेस के गठबंधन की सरकार बन चुकी थी। जो कि ममता बनर्जी के नेतृत्व में है।

वर्ष 2011 में गोरखालैण्ड आन्दोलन के इतिहास में एक और महत्वपूर्ण पन्ना जुड़ा था, गोरखालैण्ड क्षेत्रीय परिषद (Gorakhaland Territorial Administration GTA) इसका गठन दा0मो0पा0 परिषद के स्थान पर हुआ दार्जिलिंग ट्रीटी नाम से चर्चित इस समझौते पर पश्चिम बंगाल सरकार की ओर से राज्य के गृह सचिव जी0डी0 गौतम, केन्द्र सरकार की ओर से गृह मंत्रालय से संयुक्त सचिव के0के0 पाठक तथा गोरखा समुदाय की ओर से गोरखा जनमुक्ति मोर्चा के महा सचिव रोशन गिरी ने 18 जुलाई 2011 हस्ताक्षर किये। केन्द्रीय गृहमंत्री पी0 चिदम्बरम एव पश्चिम बंगाल को मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की उपस्थिति में यह हस्ताक्षर किये गये।[15]

इस समझौते के तहत जी0टी0ए0 का गठन एक अधिनियम के तहत किया गया। इससे दार्जिलिंग के अतिरिक्त कलिपोंग व कुर्सियाग सब डिवीजन जी0टी0ए0 के दायरे में आयेगे। जी0टी0ए0 के पास प्राशासनिक कार्यकारी एवं वित्तीय शक्तियॉ तो हैं किन्तु वैधानिक शक्तियॉ नहीं है। यह एक अर्द्ध स्वायत्त प्रशासनिक निकाय है।

गोरखा बहुल डुवर्स के भू भाग को शामिल न किये जाने के कारण जनता में असंतुष्टि थी। गो0ज0मु0 मोर्चा ने 396 मौजाओं को जी0टी0ए0 के अन्तर्गत शामिल करने की मांग की तो न्यायमूर्ति श्यामल सेन कमेटी गठित की गई, लेकिन उस कमेटी ने भी केवल पॉच मौजा जी0टी0ए0 में शामिल करने का फैसला दिया, तो गोरखा सब जगह भड़क गये तब ममता बनर्जी ने फैक्ट फाइडिंग कमेटी का गठन किया। लेकिन उसका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला। उधर तेलांगना के गठन की स्वीकृति मात्र से गोरखालैण्ड आन्दोलन ज्वालामुखी रुप में परिवर्तित हो गया। 30 और 31 जुलाई को पहाड़ बंद का ऐलान किया। इस कई दिनों की हड़ताल बंद जनता कर्फयू की घोषणा करके मुख्यमंत्री की धमकी को अर्थहीन बना दिया। क्योंकि तृणामूल कांग्रेस, कांग्रेस, भाजपा (राज्य) इत्यादि बड़ी पार्टियॉ बंगाल विभाजन के पक्ष में नहीं थे। इसी बीच जी0टी0ए0 के चीफ एक्जीक्यूटिव पद से विमल गरुंग ने त्याग पत्र दे दिया और पृथक गोरखालैण्ड के लिये आन्दोलन तेजकर दिया।

इस प्रकार गोरखालैण्ड जो एक पृथक राज्य की परिणीत चाहता है वह बार–2 क्षेत्रीय प्रशासन/अर्द्धस्वायत्त प्रशासन द्वारा शांत करा दिया जाता है। किन्तु एक बात ध्यान देने वाली यह है कि वहॉ की स्थानीय जनता के विकास, सांस्कृतिक महत्व को बढ़ावा देने, शैक्षिक स्तर को उच्च बनाने के लिये किसी ने कोई प्रयास नहीं किया।

गोरखा लैण्ड आन्दोलन को जन्म देने के मुख्य कारण–

प्रस्तावित पृथक गोरखालैण्ड आन्दोलन के इतिहास के अध्ययन कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का पता चलता है जो इस आन्दोलन के कारणों के रुप में देखे जा सकते हैं:–

- भारत–नेपाल संधि 1950 में इस आन्दोलन के वैचारिक आधार को देखा जा सकता है। जिसके 7वे नियम के अन्तर्गत नेपाली और भारतीय गोरखाओं में भेद नहीं किया गया। साथ ही नेपाली नागरिको को भारत में सम्पत्ति अधिग्रहण करने एवं रोजगार पाने का अधिकार तो प्राप्त है। परंतु वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यही अधिकार भारतीय नागरिको को नेपाल सरकार की ओर से भी सुनिश्चित किया गया है। सुभाष घीसिंग का कहना है कि इस नियम में भारत में मूल रुप से बसे गोरखा– नेपाली और नेपाल के मूल

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

निवासियों जो रोजगार आदि की तलाश में भारत आते हैं उनमें स्पष्ट भेद नहीं किया फलतः भारत के कई भागों में भारतीय नेपालियों के साथ नागरिकों जैसा व्यवहार नही किया जाता है।[16] जिसके कारण क्षेत्र विशेष के लोगों ने भारत में एक नेपाली राज्य की स्थापना के लिये अपना आन्दोलन तीव्र कर दिया।

- पृथक गोरखालैण्ड की स्थापना के लिये एक प्रमुख कारण पश्चिम बंगाल सरकार की शोषणएवं भेद भाव पूर्ण नीति भी माना जाता है। इसका उल्लेख सुभाष धीसिंग ने एक मांग पत्र द्वारा प्रधानमंत्री राजीव गांधी से भी किया था। उसका आरोप था कि पश्चिम बंगाल की सरकार गोरखाओं के शिक्षण प्रशिक्षण की न तो कोई उपयुक्त व्यवस्था की न ही 1961 के पश्चिम बंगाल सरकारी भाषा एक्ट को सही रुप से लागू किया इस एक्ट में प्रावधान था कि नेपाली भाषा को सरकारी भाषा के रुप में प्रयुक्त करना था।
- नेपाली भाषी जनता को पश्चिम बंगाल में उच्च पद पर नियुक्ति हेतु भेदभाव पूर्ण नीति अपनायी जाती है।
- पृथक गोरखालैण्ड एवं पृथक प्रशासनिक इकाइयों की मांग के लिये गोरखा जनजातियों को जागरुक बनाने का काम इसाई मिशनरियों का विशेष योगदान है।[17]
- भारत के अन्य क्षेत्रों में चल रहे स्वायत्ततावादी पृथक पहचान की मांगे एवं पृथक राज्यों के गठनों ने भी इस आन्दोलन को जीवन्त बनाये रखा।
- विभिन्न दलों द्वारा अपने–अपने राजनीतिक हस्तक्षेप से भी इस आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला जहां एक तरफ कम्यूनिस्ट पार्टी पश्चिम बंगाल में कांग्रेस की लोकप्रियता को कम करने के लिये गोरखालैण्ड के आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रही थी। वहीं कांग्रेस पश्चिम बंगाल में सी0पी0आई0 (एम) को कमजोर करने के लिये इस आन्दोलन को समय–समय पर प्रोत्साहित करते रहे। यहां तक कि स्वयं इस आन्दोलन से जुड़े नेता भी स्वार्थपूर्ण राजनीति का ही प्रयोग कर रहे थे। इन्हें वहां की स्थानीय जनजातियों के हितों अधिकारों की नहीं अपने पद, वर्चस्व को कायम रखने की चिंता थी। वे अपनी राजनीति इसके आधार पर हीं संचालित करते है।

निष्कर्षतः पूवोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि गोरखालैण्ड आन्दोलन राजनीतिक फेर में फॅस कर दीर्घकालिक होता जा रहा है। एक शताब्दी से भी अधिक पुराने इस आन्दोलन को केवल अर्द्ध स्वायत्तशासी प्रशासन से ही संतोष करना पड रहा है। प्रस्तावित गोरखालैण्ड की स्थानीय जनजातियों की वास्तविक समस्या का यथा सम्भव अभी तक कोई सार्थक हल नहीं निकला। हॉ ये तो अवश्य है कि प्रस्तावित गोरखा लैण्ड चार दिशाओं से संवेदनशील अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से घिरे होने के कारण इसे एक पृथक राज्य के रुप में स्थापित करना राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये कई चुनौतियां उत्पन्न कर सकता है। किन्तु हमें स्थानीय जनता के हितों को उपेक्षा भी न ही करनी चाहिए।

गोरखालैण्ड आन्दोलन वास्तव में नृजातिता, अल्प विकास, उपेक्षित व्यवहार, पहचान के संकट, व्यक्तिगत राजनीतिक स्वार्थो का मिश्रण का प्रतिफल है Swatahsiddha Sarkar ने अपनी पुस्तक Gorkhaland movement : Ethinic Conflict and State Response में यह प्रश्न उठाया है कि वो क्या कारण है कि समय–समय पर सरकार द्वारा सार्थक परिषदों के गठन के उपरांत भी गोरखालैण्ड का मुद्दा बार–बार देश के सामने खड़ा हो जाता है। वास्तव में गोरखालैण्ड का मुद्दा पहचान के संकट और विकासपूर्ण नीतियों से जुड़ा है जो हमेशा स्वार्थपूर्ण राजनीतिक नितियों के कारण बलि चढ़ जाता है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि सुभाष घिसिंग ने प्रस्तावित गोरखालैण्ड को सिक्किम से जोड़ने का प्रयास क्यों नहीं किया? सिक्किम में गोरखालैण्ड के विलय से दोनों के आर्थिक संसाधनों की पूर्ति के साथ–साथ लोक सभा और राज्य सभा में उनकी सीटों के आधार पर उनकी राजनीतिक शक्ति भी बढती किन्तु यदि ऐसा होता तो घीसिंग की व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति कैसे होती उसका राजनीतिक भविष्य ही शायद समाप्त हो जाता।[18] इसके अलावा गोरखालैण्ड का पृथक राज्य के रुप में गठन का समर्थन अधिकांश राजनीतिक दल चुनावों के समय करते है। जैसा कि 2009 में भा0जा0प0 में चुनाव से पूर्व गोरखालैण्ड राज्य का समर्थन किया, उन्होंने चुनाव जीता भी किन्तु गोरखालैण्ड का कोई निस्तारण नहीं हुआ।

यदि प्रस्तावित गोरखालैण्ड के क्षेत्रों में त्वरित विकास, शिक्षण प्रशिक्षण हेतु सार्थक प्रयास, रहन सहन के स्तर को उच्च बनाना, भेद भाव नीति को समाप्त करना, जनता से समानता की भावना को प्रोत्साहित करना, पहचान के संकट को मिटाना एवं जन जीवियों के अस्तित्व बनाये रखने के सार्थक प्रयास करें तो शायद उस क्षेत्र से पृथकतावादी आवाजें बंद हो जायें।

प्रशासनिक कुशलता, विशेष संस्कृति या भाषा की सुरक्षा के संदर्भ संघ के भीतर पृथक राज्य निर्माण करना बुरा नहीं है। प्रत्येक क्षेत्र विशेष का अपना आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पक्ष होता है और उनकी मांगे सही हैं तो ऐसे राज्य, राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सच्ची भागीदारी निभायेंगे किन्तु केवल क्षेत्रीय भावना और संकुचित स्वार्थ पर आधारित राज्य का गठन राष्ट्र हित के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्रीय एकता सर्वोपरि है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

संदर्भ सूची

1- Sandhu, R.S. (2000) Regionalism, Institutional development and Nationality Question in India's North East, Punjab Journal of Politics, Amritsar, Guru Nanak Dev University Vol. XXIV PP 105 and 106.

2- चन्द्र, विपिन और अन्य (2002) आजादी के बाद का भारत 1947– 2000, विश्वविद्यालय प्रकाशन दिल्ली पृ0सं0: 165.

3- सिंह, अमरनाथ (2008) भारत में राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव, अमर पब्लिकेशन वाराणसी पृ0सं0: 56

4- Mukherjee, Bharati, (1992) Regionalism in Indian Perspective. K.P. Bagchi and Company Delhi PP 30 and 31.

5- चन्द्र, विपिन एवं अन्य पूर्वोक्त पृ0सं0 132.

6- Datta, Prabhat, 1993 Regionalsation of Indian Politics, Sterling Publication. New Delhi PP 146.

7- गोरखालैण्ड आन्दोलन संघर्ष जारी है समयांतर डैस्क– सितम्बर 2013.

8- The parliament is the supreme and ultimate authority of India, Darjeeling times 23 Nov 2010.

9- Majumdar, A.K. and Bhanwar Singh (eds) 1987) Regionalism in Indian Politics, Radha Publication New Delhi. P.P. 244.

10-संवाद सेतु राष्ट्रवाद, सोमवार, 18 जुलाई 2011.

11- Dutta. P. (1995) "Gorkhaland and Bodoland Movements etc. in Lalan Tiwari (ed) Issues in Indian Politics, Mittal Publication, New Delhi. P.71.

12-मिश्र, डा0 विश्वनाथ 2006 भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद और नृजातीयता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर पृ0सं0 92.

13-सेतु संवाद राष्ट्रवाद सोमवार 18 जुलाई 2011.

14-दत्ता0पी0 पूर्वोक्त पृ0सं0 76–77

15-दैनिक जागरण, 19 जुलाई 2011 पृ0 1.

16-दत्ता पी0 पूर्वोत्तर पृ0 सं0 81.

17-मिश्र डा0 विश्वनाथ पूर्वोत्तर पृ0 सं0: 95

18-पूर्वोक्त पृ0 सं0: 101.